महत्वाकांक्षी अर्थव्यवस्थाओं में बैंकिंग विनियमन की परिकल्पना - चुनौतियां*

आर. गांधी

प्रो. सुरेश अगरवाल, विभागाध्यक्ष, व्यवसायिक अर्थशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्व विद्यालय, विभाग के 41वें वार्षिक सम्मेलन की पताका के प्रतिनिधिगण और सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्यार्थियो-आप सबको सुप्रभात! यह मेरा सौभाग्य है कि आज मैं इस सम्मेलन में उद्घाटन भाषण देने के लिए उपस्थित हूँ। यह सम्मेलन उद्योग और अकादमी को विभिन्न वर्तमान मुद्दों पर परस्पर चर्चा करने के लिए मूल्यवान मंच उपलब्ध कराता है जिससे अच्छे कारोबारी एवं विकास का वातावरण तैयार होता है। बैंकिंग, किसी भी देश में व्यापार के विकास, निवेश तथा कारोबार का मेरुदंड होती है और अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण ऋण एवं भुगतान सुविधाएं एवं सेवाएं प्रदान करती है। इस पृष्ठिभूमि में, मैं समझता हूं कि यह उचित होगा कि मैं भारतीय बैंकिंग के विनियामकीय आकाश की बात करूं, खासतौर से इसपर कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने किस प्रकार से विनियमन ढांचे की काट-छांट की है जिससे कि वह अर्थव्यवस्था की उत्पन्न होती आवश्यकता और आर्थिक विकास की विषम परिस्थितियों के अनुकूल बन सके। इसलिए आज मेरा यह प्रयास होगा कि मैं स्वतंत्रता से लेकर बैंकिंग विनियमन में जो बदलाव हुए हैं उनपर बात करूं ताकि उसके पीछे जो प्रमुख चिंतन है, और बैंकिंग नीति के निर्माण में जो चुनौतियां हैं वे उभरकर सामने आएं।

बैंकिंग विनियमन क्या है और क्यों है

2. बैंक विशिष्ट होते हैं, इसलिए उन्हें विशेष प्रकार के जोखिमों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वित्तीय मध्यस्थता के अपने प्राथमिक कार्यों को पूरा करते हुए वे अत्यधिक जटिल तरीके से कई अन्य संचालकों से जुड़े होते हैं जो वास्तविक क्षेत्र के विकास एवं स्थिरता की गति को आगे बढ़ाते हैं। बैंक, मौद्रिक नीति के प्रसार के माध्यम होते हैं और ऋण सृजन तथा भुगतान एवं निपटान प्रणाली के मेरुदंड होते हैं। बैंक, बहुत ही लीवरेज्ड संस्थाएं होते हैं और एक न्यास की हैसियत से कार्य करते हैं। इसलिए, बैंकिंग विनियमन के लिए तात्कालिक प्रेरणा की बात यह है कि वह जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करे तथा बैंकिंग प्रणाली में जनता विश्वास बनाए रखे। बैंकिंग विनियमन का एक और लक्ष्य यह होता है कि वह बैंकिंग प्रणाली में क्षमता निर्माण करे तथा समुत्थान शक्ति पैदा करे, वहीं दूसरी ओर वित्तीय प्रणाली के कार्यों में उत्पन्न होने वाली चिंताओं को दूर करे। वित्तीय जोखिम स्थिरता के बजाय अत्यधिक सक्रिय प्रकार के होते हैं और वे बैंकिंग कार्यों के बढ़ने के साथ, उनके उत्पादों और वित्तीय नवोन्मेष, कार्यों में बढ़ते हुए एकीकरण तथा विकेंद्रीकरण के साथ-साथ और भी मज़बूत होते जाते हैं। संक्रामक और प्रणालीगत जोखिम, आचार-आपदा, इतने बड़े कि असफल हो जाएं, बैंकों की सरकार द्वारा वित्तीय ज़मानत जैसे कुछ ऐसे मुद्दे हैं जिनकी 2008 के विश्व के वित्तीय संकट के बाद गहनतम जांच की गई है। इस प्रकार एक ओर बैंकिंग विनियमन का अत्यधिक महत्व इसलिए है कि उसे बैंकिंग संस्थाओं की समुत्थान शक्ति और सुदृढ़ता को बनाए रखना होता है और दूसरी ओर समग्र वित्तीय प्रणाली की मैक्रो-स्तर पर विवेकपूर्ण स्थिरता सुनिश्चित करना होता है और इस प्रकार से वास्तविक क्षेत्र तथा संपूर्ण अर्थव्यवस्था की अस्थिरता एवं बाधाओं की रोकथाम करना होता है। इसके अलावा, संरचनागत एवं विकासात्मक मुद्दे भी हैं जो किसी खास अर्थव्यवस्था एवं वित्तीय प्रणाली के लिए प्रासंगिक होते हैं, जिन्हें बड़े पैमाने पर विनियामकीय उपायों की आवश्यकता होती है।

3. बैंकिंग विनियम, औपचारिक कानून एवं सांविधिक प्रावधान, विनियामकीय निर्देश तथा दिशानिर्देश, नैतिक प्रत्यायन आदि का रूप ले सकते हैं। विभिन्न समयावधि में, बैंकिंग के प्रारंभिक काल से और विभिन्न वित्तीय एवं बैंकिंग संकट ने विनियामकीय स्वरूप और उसके विषय को समय-समय पर प्रभावित किया है। पूरे विश्व में, बैंकिंग क्षेत्र का विनियमन अनेक चक्रों से गुजरा है जिसने निर्देशात्मक से सिद्धांतों पर आधारित रूप ले लिया और अपने फार्मेट की व्यापकता को कम कर दिया ताकि बाज़ार की प्रणाली अपने अनुसार रूप ले (बाजार उन्मुख विनियमन स्वरूप), संरचनात्मक प्रतिबंध से माइक्रो एवं मैक्रो-विवेकपूर्ण विनियमन

* यह श्री आर. गांधी, उपगवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा व्यावसायिक अर्थशास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा 29 सितंबर 2014 को इंडिया हैबिटैट सेंटर, नई दिल्ली में आयोजित 41वीं वार्षिक सम्मेलन में संबोधन का प्रमुख अंश है। इसके लिए सुश्री अनुपम सोनल द्वारा दी नई सहायता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित की जाती है।

आदि में बदल गया है। चूंकि बढ़ती हुई स्पर्धा, उदारीकरण, वैश्वीकरण और नवोन्मेष के कारण परंपरागत नियंत्रण आधारित नियम कमज़ोर पड़ रहे हैं, इसलिए लगातार विनियामकगत सुधार किया जाना महत्वपूर्ण हो गया है। हाल के विश्व के वित्तीय संकट ने इस बात की सख्त जरूरत पैदा कर दी है कि उसी के अनुरूप बैंकिंग विनियमन बनाए जाएं तथा विनियामकीय सुधार की प्रक्रिया लाई जाए ताकि बैंकिंग कार्यों, उसके उत्पादों और सेवाओं में होने वाली प्रगति से बैंकिंग विनियमन आगे रहे।

4. मैं आपको संदर्भगत परिस्थिति में ले जाना चाहता हूं जिन्होंने भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में विनियामक उपाय करने की ओर अग्रसर किया है तथा ऐसे औचित्य पैदा किए हैं जिसने इस प्रकार के सुधार/अथवा परिवर्तनों पर विचार करना महत्वपूर्ण बना दिया है। जहां इस संदर्भ में सबसे प्राथमिक विचार हमेशा यह रहा है कि भारतीय नीतिगत उपायों और विनियामकीय दिशानिर्देशों को अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप रखा जाए, वहीं देश में आर्थिक विकास के विभिन्न चरणों ने बैंकिंग क्षेत्र की विनियामक प्रक्रिया पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है।

उभरते बाज़ार की अर्थव्यवस्थाओं में बैंकिंग विनियमन

5. उभरते बाज़ार की अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें कुछ विशेषताएं उन्नत अर्थव्यवस्थाओं जैसी होती हैं, किंतु वह उन्नत अर्थव्यवस्था नहीं होती हैं, उसमें एक न एक दिन उन्नत अर्थव्यवस्था बनने की महत्वाकांक्षा होती है, इसकी अपनी खास विशेषताएं होती हैं और यह उन्नत अर्थव्यवस्था से कई अर्थों में भिन्न होती है। उभरते बाज़ार की अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसमें प्रति व्यक्ति आय कम से मध्यम स्तर तक की होती है और वहां पर विश्व की अधिकांश आबादी निवास करती है। ईएमई को उभरते हुए के रूप में कुछ खास तरीके से वर्गीकृत किया गया है क्योंकि हाल के वर्षों में विकास और सुधार के लिए अपेक्षाकृत पहल की गई हैं और उनके बाज़ार खुलने प्रारंभ हो गए हैं और वे विश्व स्तर पर 'उभर' कर आ जाएंगे। ईएमई तेज़ी से विकसित होती अर्थव्यवस्थाएं हैं, इसमें बचत व निवेश दोनों का घरेलू एवं विदेशी स्तर पर, उपभोग एवं विकास करने की दर, सब कुछ के लिए ज़रूरत है कि वे ऊंची दर पर हों और अपने छोटे आधार के कारण उनकी गति कहीं तेज हो।

6. तदनुसार, ईएमई की अपने खास आर्थिक और विकासात्मक ज़रूरतें हैं और कार्यसूची है। वैश्विक बैंकिंग विनियामकीय मानक, अथवा इस मामले में, किसी अन्य वित्तीय क्षेत्र के लिए विनियामकीय ढांचा कुछ इस प्रकार से बनाया जाता है कि वह उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की ज़रूरतों और उनके विकास स्तर के अनुरूप हो। इसका मूलभूत कारण यह है कि पूरे विश्व में मानक निर्धारण मंच पर उनका और उनकी भूमिका का वर्चस्व है, उनके वित्तीय क्षेत्र का विकास अधिक उन्नत चरण में है जिसमें जटिलताओं का स्तर भी उतना ही अधिक है, उनके पास वित्तीय उत्पादों में विविधता है और वे अधिक परिमार्जित हैं, उनकी अर्थव्यवस्थाओं की नवीन सेवाएं/प्रदान की जा रही सेवाएं उत्तम हैं। लेकिन, ईएमई में विद्यमान वित्तीय बिचौलियों तथा उपलब्ध वित्तीय उत्पादों एवं सेवाओं में प्रायः अधिक और तीव्र विकास, बचत, निवेश आदि की जरूरतों को पूरा करने की घोर कमी है। इसके अलावा, मूलभूत सुविधा एवं सामाजिक क्षेत्रों, तथा वास्तविक क्षेत्र में धन की आवश्यकता अप्रत्याशित रूप से पूरी नहीं होती हैं, खासतौर से धन की सख्त कमी के कारण, निवेशक उदासीन होते हैं तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर का विश्वास नहीं होता, सामाजिक और सरकारी संस्थाओं की स्थिति अविकसित हैं, उपयुक्त कौशल विशेषज्ञता तथा एक्सपर्टाइज का स्तर कम है, आदि। इन कारणों से उत्पन्न होने वाले जोखिम एवं अस्थिरता दोनों समान रूप से बड़े हैं और प्रायः ईएमई के वातावरण के अनुरूप होते हैं। यही कारण है कि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में विनियामकीय मानक ज़मीनी सच्चाई को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं, जो जरूरी नहीं कि ईएमई के लिए भी पूरी तरह सही हों और ईएमई इस संबंध में जहां राष्ट्रीय विवेक का इस्तेमाल करती हैं वहीं अपने विनियामकीय ढांचे को विश्व की सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप भी ढालना चाहती हैं।

भारत में बैंकिंग का उद्भव

7. भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना, भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 के प्रावधानों के अनुसार 1 अप्रैल 1935 को की गई थी। यह देश में लंबे समय से एक केंद्रीय बैंक स्थापित करने के प्रयासों का परिणाम था। उस समय देश की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप विनियामकीय ढांचे के सिद्धांत को समरूप बनाया गया था और उसके लिए यहां तक कि प्रचलित विवेक एवं लोकाचार से

आगे की बात की गई थी जो उस समय साफ दिखाई देती थी। बावजूद इसके कि रिज़र्व बैंक को एक केंद्रीय बैंक के रूप में गठित किया गया था, लेकिन यह उचित समझा गया था कि उसके विधान में रिज़र्व बैंक की विकासात्मक भूमिका का उल्लेख कर दिया जाए। तदनुसार, अधिनियम में यह प्रावधान है कि रिज़र्व बैंक कृषि विकास और संबद्ध विषयों (बाद में उसका विस्तार ग्रामीण विकास के रूप में कर दिया गया) में विशेषज्ञता विकसित करेगा और बनाए रखेगा, तथा इस प्रकार से केंद्रीय बैंक की जो भूमिका प्रारंभ हुई वह अर्थव्यवस्था की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील रही है।

8. उस समय, यद्यपि निजी बैंक दिखाई दे रहे थे, किंतु धन के लिए साहूकार ही सबसे बड़े स्रोत थे। एक प्रकार की सूदखोरी और शोषण करने वाली प्रणाली मौजूद थी। और इस प्रकार से 1947 में स्वतंत्रता मिलने के बाद 1949 में बैंकिंग कंपनी अधिनियम पारित करके भारतीय बैंकिंग उद्योग को भारतीय रिज़र्व बैंक की विनियामकीय परिधि में लाया गया। बाद में, मार्च 1966 में कतिपय सहकारी समितियों को इसके अधीन लाया गया और इस अधिनियम का नाम बदलकर बैंककारी विनियमन अधिनियम, 1949 (बीआरएक्ट) कर दिया गया। इस अधिनियमन से भारतीय रिज़र्व बैंक को बैंकों के ऊपर अत्यधिक शक्तियां प्राप्त हो गईं। यद्यपि, रिज़र्व बैंक का अभिषेक विनियामक के रूप में किया गया है, लेकिन रिज़र्व बैंक अर्थव्यवस्था की महत्वाकांक्षा को जीवंत रखने के लिए अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सदैव जागरूक था, रहा है और रहेगा।

भारत में केंद्रीय बैंक की संवर्धनात्मक और विकासात्मक भूमिका

9. भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम के आमुख के अनुसार रिज़र्व बैंक का बुनियादी कार्य, बैंक नोट जारी करने का विनियमन करना तथा भारत में मौद्रिक स्थिरता बनाए रखने की दृष्टि से आरक्षित राशियां रखना और सामान्य तौर पर देश की करेंसी व ऋण प्रणाली का संचालन देश के हित में करना। इन कार्यों ने रिज़र्व बैंक पर निम्नलिखित जिम्मेदारियां डाल दी :

- मूल्य स्थिरता कायम रखने के लिए मौद्रिक नीति का परिचालन करना और विकासात्मक प्रयोजनों के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन सुनिश्चित करना;
- कुशल वित्तीय प्रणाली को प्रोत्साहित करना और
- जन सामान्य की मुद्रा की अवश्यकताओं को पूरा करना

10. इन जिम्मेदारियों को पूरा करने की प्रक्रिया में, रिज़र्व बैंक ने पिछले वर्षों में बड़े पैमाने की संवर्धन एवं विकासात्मक भूमिकाएं हासिल की हैं। आयोजनाबद्ध विकास प्रक्रिया के माध्यम से अर्थव्यवस्था के विकास को गति प्रदान करने एवं उसे कायम रखने के सरकार के प्रयासों तथा उसके सामाजिक-आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भी रिज़र्व बैंक से अनुपूरक भूमिका अपेक्षित है। पहली पंचवर्षीय योजना में यह बात ज़ोरदार तरीके से कही गई है 'आयोजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में केंद्रीय बैंकिंग समग्र ऋण आपूर्ति के विनियमन तक ही सीमित नहीं रखी जा सकती अथवा बैंक ऋण प्रवाह के नकारात्मक विनियमन तक भी नहीं। उसे सीधे-सीधे सक्रिय भूमिका निभानी होगी - पहली, पूरे देश में विकासात्मक गतिविधियों के लिए आवश्यक मशीनरी के सृजन में या सृजन में सहायता देना, और दूसरी, वित्त की उपलब्धता का प्रवाह अपेक्षित दिशा में करना'।

विशिष्टीकृत संस्थाओं की स्थापना

11. इस अधिदेश को जो भारतीय रिज़र्व बैंक अधिनियम, 1934 में परिभाषित उद्देश्यों से हटकर उत्पन्न हुए थे जिनकी शुरूआत 1950-51 से पंचवर्षीय योजना में हुई थी, पूरा करने के लिए रिज़र्व बैंक ने अनेक प्रकार की विशेष पहल की हैं। इनमें से बचत और पूंजी-निर्माण को बढ़ावा देने के लिए सुपरिभाषित संरचना और ऋण संस्थाओं की स्थापना करना तथा कृषि एवं औद्योगिक ऋण के प्रवाह को गहन बनाना शामिल है।

12. रिज़र्व बैंक ने कृषि क्षेत्र को अल्पकालिक ऋण उपलब्ध करवाने के लिए सहकारिता के विकास को बढ़ाने के अलावा एक पृथक संस्था नाबार्ड की स्थापना की जो कृषि क्षेत्र एवं ग्रामीण विकास को मध्यावधि एवं दीर्घावधि पुनर्वित्त सुविधा उपलब्ध कराने के साथ सरकार एवं बैंकों को परामर्शी सेवाएं देने और सामान्यतया कृषि क्षेत्र में अपनी उन गतिविधियों के लिए ऐसी एजेसियों के साथ समन्वय करना जो ऋण सुविधाएं प्रदान कर रही हैं। इसके अतिरिक्त, रिज़र्व बैंक ने एक पूंजी बाजार न होने की स्थिति में, सक्रिय रूप से अखिल भारतीय स्तर पर एवं क्षेत्रीय

स्तर पर अनेक विशिष्ट वित्तीय संस्थाएं स्थापित करने में सहायता की है ताकि उद्योग को मीयादी वित्त की सुविधा बढ़े और बचतों को संस्थाओं में लाया जा सके। इस प्रकार की पहल में शामिल हैं - भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (आईएफसीआई), राज्य वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक और विकास बैंक (आईडीबीआई) और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया की स्थापना करना है। छोटे जमाकर्ताओं को सुरक्षा कवच प्रदान करने तथा कमर्शियल बैंकों एवं अन्य वित्तीय संस्थाओं को छोटे उधारकर्ताओं के विभिन्न श्रेणी को ऋण प्रदान करने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए रिज़र्व बैंक ने बैंकों द्वारा या बैंकों को किए गए भुगतान में चूक होने के जोखिम को पूरा करने के लिए बीमा और गारंटी प्रदान करने हेतु भारतीय निक्षेप बीमा और प्रत्यय गांरटी निगम (डीआईसीजीसी) को बढ़ावा दिया।

13. इसके अलावा, रिज़र्व बैंक ने विशेष प्रकार के वित्तपोषण के लिए विशिष्ट स्वरूप की संस्थाओं की स्थापना की जैसे राष्ट्रीय अवास बैंक (एनएचबी) और भारतीय निर्यात-आयात बैंक (एक्सिम बैंक) को स्थापित करने में सहायता की। सरकारी प्रतिभूति और खज़ाना बिलों के लिए बाजार बनाने हेतु रिज़र्व बैंक ने भारतीय मितिकाटा और वित्त गृह (डीएफएचआई) और भारतीय प्रतिभूति व्यापार निगम (एसटीसीआई) की स्थापना की। रिज़र्व बैंक ने बाजारगत मूलभूत सुविधाओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारतीय समाशोधन निगम (सीसीआईएल) और भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम लिमि. (एनपीसीआई) की सहायता की।

भारतीय बैंकिंग प्रणाली की संभावनाओं और पहुंच को विस्तार

14. हालांकि 1960 के दशक के अंत तक भारतीय बैंकिंग प्रणाली ने काफी प्रगति कर ली थी, फिर भी ऐसे बहुत से ग्रामीण तथा अर्ध-शहरी क्षेत्र थे जिसमें बैंकिंग सेवाएं नहीं थीं। बड़े उद्योग और बड़े एवं स्थापित कारोबारी घराने अधिकांश ऋण-सुविधाओं का फायदा उठाते थे, जो प्राथमिकता क्षेत्र जैसे - कृषि, लघु-उद्योग और निर्यात के प्रतिकूल था। इसलिए अर्थव्यवस्था की अवश्यकताओं के अनुरूप संसाधनों के कुशल वितरण के लिए तथा प्राथमिकता क्षेत्र की जरूरतों को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा बैंकिंग विधि को संशोधित करते हुए बैंकों पर सामाजिक नियंत्रण लाने का निर्णय लिया गया। तदनुसार, 19 जुलाई, 1969 और 15 अप्रैल 1980 को क्रमशः 14 और 6 बड़े भारतीय निजी क्षेत्र के अनुसूचित वाणिज्य बैंकों को राष्ट्रीयकृत कर दिया गया। बैंकिंग नीति के विकास में सामाजिक नियंत्रण एक संक्रमण काल था और इस प्रकिया में रिज़र्व बैंक द्वारा ऋण आयोजना और अग्रणी बैंक योजना शुरू की गई जिससे बैंकिंग प्रणाली आर्थिक और सामाजिक विकास के उपकरण के रूप में कार्य कर सके।

15. सामाजिक नियंत्रण के इन उद्देश्यों के अनुसार बैंकिंग नीतियों को सत्तर के दशक में गरीबी में क्रमिक रूप से कमी करने, आर्थिक शक्तियों के केंद्रीकरण को रोकने तथा बैंकिंग सुविधाओं में क्षेत्रीय स्तर पर असमानता को कम करने की ओर मोड़ दिया गया। बैंकिंग नीति के संवधर्नात्मक पहलू को अत्यधिक महत्व दिया गया। इस दिशा में, अन्य बातों के साथ, शाखा विस्तार नीति बनाई गई, जिसका इस्तेमाल बैंकिंग विकास में अंतर-क्षेत्रीय असमानता को कम करने, ऋण-संवितरण के लिए ऋण और शहरी-ग्रामीण पैटर्न को लागू किया गया। नियंत्रित ब्याज नीति, निधि के प्रवाह को दिशा देने तथा जमाराशियां जुटाने एवं बढ़ाने का महत्वपूर्ण उपकरण सिद्ध हुई। रिज़र्व बैंक ने चयनात्मक ऋण नियंत्रण योजना के अंतर्गत उन क्षेत्रों के लिए चयनात्मक रूप से ऋण विस्तार की नीति अपनाई जिन्हें राष्ट्रीय उद्देश्य के अनुसार प्राथमिकता क्षेत्र बनाया गया था। इसका उद्देश्य यह था कि सट्टेबाजी की गतिविधियों की वजह से खाद्यान्न तथा कृषि के कच्चे माल के मूल्यों में जो अनुचित मूल्य वृद्धि की जाती थी उसे रोका जाए। चयनात्मक ऋण नियंत्रण के मुख्य उपकरण इस प्रकार थे - ए) उधार पर न्यूनतम मार्जिन रखना और बी) चुनिंदा वस्तुओं के स्टॉक को ध्यान में रखकर ऋण की सीमा तय किया जाना ताकि दिए जाने वाले ऋण की मात्रा पर नियंत्रण रखा जा सके।

16. 1985 के बाद की अवधि समेकन-प्रक्रिया की अवधि थी जिसमें ये बातें शामिल थीं - (i) बैंकों द्वारा, संगठन, संरचना, प्रशिक्षण, हाउसकीपिंग, ग्राहक-सेवा, ऋण प्रबंधन और बैंक बकायों की वसूली, उत्पादकता तथा लाभ-प्रदता के लिए व्यापक कार्य-योजना बनाना, (ii) बैंकिंग के कार्यों में चरणबद्ध रूप से आधुनिक प्रौद्योगिकी को लागू करना जिसमें वित्तीय संभाव्यता पर ज़ोर दिया गया और लाभप्रदाता से संबंधित नीति-संबंधी

बाध्यताओं को सहज बनाया गया, (iii) बैंकों के पूंजी आधार को मज़बूत बनाना तथा (iv) उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में नरमी प्रदान करना।

17. अस्सी के दशक के अंत तक भारतीय अर्थव्यवस्था ने बड़े पैमाने पर वित्तीय महासंरचना विकसित कर ली जिसमें शामिल था - संस्थाओं का बृहत नेटवर्क, विभिन्न प्रकार के लिखतों को प्रारंभ करना और निधियों को जुटाना, आसान बनाना एवं उनका उपयोग कार्यशील पूंजी तथा उत्पादन हेतु ऋण के प्रयोजन से करना और दीर्घकालिक निवेश के रूप में उनका उपयोग करना। इस प्रकार से रिज़र्व बैंक ने एक व्यापक एवं विविध कार्य स्वरूप की वित्तीय प्रणाली को प्रोत्साहन दिया और उसका पोषण किया।

1990 के दशक का वित्तीय क्षेत्र सुधार- नई आर्थिक नीति का युग

18. अप्रैल, 1951 में प्रारंभ किए गए आर्थिक आयोजना के चरण में आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए वित्तीय तथा भौतिक नियंत्रण का निर्धारण किया गया और वित्तीय प्रणाली का उत्तरोत्तर इस्तेमाल अर्थव्यवस्था की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया। कमर्शियल बैंकों को ब्याज दर नियंत्रण तथा विनियमों के अधीन लाया गया जैसे नकदी प्रारक्षित अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) के रूप में नियंत्रण, निर्देशों के आधार पर उधार देना, ऋण प्रदान करने से संबंधित मानदंडों का निर्धारण। 1951 में सीआरआर और एसएलआर दोनों बैंक की कुल जमाराशि का तकरीबन 28 प्रतिशत तक की राशि पहले ही रखवा लेते थे जिसे 1991 में बढ़ाकर 63.5 प्रतिशत कर दिया गया। इसके अलावा, निर्धारित प्राथमिकता क्षेत्रों को रियायती ब्याज दर पर ऋण का संवितरण किया गया जो बैंक के ऋण का अच्छा खासा हिस्सा था और कालांतर में इस ऋण का वितरण 40 प्रतिशत तक पहुंच गया।

19. हालांकि 1951 के बाद जो कदम उठाए गए उससे संसाधनों के जुटाने में काफी प्रगति हुई और उनका इस्तेमाल भी 1951 से पहले की अवधि की तुलना में अधिक हुआ, किंतु वित्तीय प्रणाली में कई प्रकार की अड़चनें, जटिलताएं और कमज़ोरियां पैदा हो गईं जो वित्तीय प्रणाली के समक्ष अधिक कुशलता एवं स्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका अदा करने में बाधा बन गईं। बैंकिंग प्रणाली की कार्य-कुशलता, उत्पादकता और लाभप्रदता की स्थिति अत्यधिक चुनौतीपूर्ण बन गई। बैंकों के पास अनर्जक आस्तियों का अंबार लग गया। अस्सी के दशक में आर्थिक विकास में जो गति पैदा हुई थी उसमें समष्टि-आर्थिक असंतुलन तथा संरचनागत जटिलताओं का भी समावेश था। 1990 के दशक में, समष्टि-आर्थिक स्थिति कमज़ोर थी और मुद्रास्फीति बढ़ रही थी, राजकोषीय घाटा बहुत अधिक था, आर्थिक विकास की गति मंद थी तथा चालू राजकोषीय घाटा गैर-वहनीय हो गया, खाड़ी युद्ध ने भुगतान-संतुलन में संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। इसके कारण अंतरराष्ट्रीय विश्वास समाप्त हो गया और फलस्वरूप कमर्शियल उधार सूख सा गया तथा अनिवासी भारतीयों की जमाराशियों में से अत्यधिक पूंजी बाहर चली गई। जून 1991 में विदेशी मुद्रा भंडार न्यूनतम 1 बिलियन अमरीकी डालर (तकरीबन दो सप्ताह के आयात के बराबर) तक पहुंच गया। इसके साथ ही, अगस्त 1991 तक मुद्रास्फीति वार्षिक आधार के अनुसार 17 प्रतिशत की चरम सीमा पर पहुंच चुकी थी। इन समस्त कारणों से भारत पर अंतरराष्ट्रीय वचनबद्धता को पूरा करने का दबाव बन गया।

20. ऐसी स्थिति में समष्टि-आर्थिक स्थायित्व लाने तथा संरचनागत स्थिरता को दूर करने के लिए कड़े उपायों की आवश्यकता थी। प्रतिक्रियास्वरूप, आर्थिक और वित्तीय प्रणाली दोनों की उत्पादकता एवं कुशलता बढ़ाने हेतु एक स्पर्धात्मक वातावरण विकसित करने के लिए गहनतम सुधार कार्यक्रम प्रारंभ किए गए। इस पहल का एक हिस्सा यह था कि वास्तविक क्षेत्र का विनियमन समाप्त कर दिया गया और लाइसेंस तथा परमिट सिस्टम हटा दिया गया जो उत्पादन और घरेलू व्यापार के सभी क्षेत्रों में सबसे बड़ी रुकावट बने हुए थे। यह महसूस किया गया कि व्यापार और औद्योगिक नीति उदारीकरण के अनुसार वित्तीय क्षेत्र में सुधार करना आवश्यक था।

21. संरचनागत सुधार के रूप में भारतीय वित्तीय प्रणाली की मरम्मत का कार्य प्रारंभ हो गया था। अगस्त, 1991 में भारत सरकार ने वित्तीय प्रणाली की संरचना, संगठन, कार्य और प्रक्रिया संबंधी समस्त पहलुओं की जांच के लिए श्री एम. नरसिंहन की अध्यक्षता में एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति का गठन किया जिसने बड़े पैमाने पर सिफारिशें कीं और जो बैंकों, विकास वित्तीय संस्थाओं तथा पूंजी बाज़ार में सुधार का आधार बनीं और आने वाले वर्षों में भी आधार बनी रहेंगी। समिति की सिफारिशों का

मुख्य ध्येय यह था कि बैंकिंग क्षेत्र की आबंटनगत एवं कार्यगत क्षमता को बढ़ाया जाए और साथ ही एक गतिमान, विविधतापूर्ण, स्पर्धात्मक एवं कुशल प्रणाली लागू की जाए।

22. सुधार के पहले चरण में (1991-92 से 1997-98) अनेक परस्पर प्रभाव डालने वाले उपाय किए गए जिसमें इस बात पर फोकस किया गया था कि विवेकपूर्ण मानदंडों को लागू करते हुए कमर्शियल बैंकिंग क्षेत्र को मज़बूत बनाया जाए, परिचालनगत उदारता तथा कार्य करने की स्वायत्तता प्रदान करते हुए पर्यवेक्षी पंरपरा को सुदृढ़ किया जाए। इस अवधि के दौरान जो उपाय किए गए उनमें शामिल हैं - बैंकों के पूंजी आधार को मज़बूत करने के लिए पूंजी पर्याप्तता मानदंडों को अपनाना, आइआरएसीआइ निर्धारण और (आस्ति वर्गीकरण) मानदंड लागू करना ताकि बैंकों की आस्ति-गुणवत्ता का सही मूल्यांकन किया जा सके, एसएलआर और सीआरआर में चरणबद्ध रूप से कमी करना ताकि बैंकों के पास उधार देने योग्य संसाधन में वृद्धि की जा सके, ब्याज दरों को युक्तिपरक बनाना एवं उनका गैर-विनियमन ताकि बैंकों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया जाए, बैंकिंग क्षेत्र में नए खिलाड़ियों को अनुमति देना जिससे स्पर्धा बढ़े और शाखा विस्तार को अधिक लचीला बनाना। इस चरण में सुधार का एक और पहलू यह था कि संस्थागत व्यवस्थाएं की गईं जैसे-1994 में रिज़र्व बैंक के भीतर वित्तीय पर्यवेक्षण बोर्ड का गठन करना ताकि बैंकों पर निगरानी और पर्यवेक्षण व्यवस्था को मज़बूत किया जा सके, खासतौर से उदार वातावरण में बैंकों द्वारा अधिक जोखिमों का सामना किए जाने को ध्यान में रखते हुए बनाया गया, 1995 में संकट प्रबंधन ढांचे के हिस्से के रूप में अत्याधुनिक निगरानी चौकसी प्रणाली (ऑसमॉस) लागू की गई जो पूर्व चेतावनी प्रणाली (ईडब्लूएस) की तरह काम करेगी तथा जोखिमों से प्रभावित होने वाली संस्थाओं के प्रत्यक्ष निरीक्षण का संकेत देगी, बैंकिंग सेवाओं में कमियों के विरुद्ध ग्राहकों की शिकायतों के तीव्र एवं सस्ते समाधान के लिए बैंकिंग लोकपाल योजना लागू करना तथा ऋण संबंधी जानकारी को संग्रहीत करके उसका प्रसार करना ताकि नई एनपीए की घटनाओं को रोका जा सके। एनपीए प्रबंधन के लिए अनेक अन्य चैनल भी लागू किए गए, साथ ही लोक अदालत, ऋण वसूली न्यायाधिकरण, कार्पोरेट ऋण पुनर्रचना प्रणाली तथा आस्ति पुनर्निर्माण कंपनी (एआरसी) की स्थापना ऋण मूल्यांकन प्रक्रिया एवं वसूली व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के लिए की गई।

23. दूसरे चरण में (1998-99 और उससे आगे) अंतरराष्ट्रीय सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुरूप विवेकपूर्ण मानदंडों को और मज़बूत बनाया गया, ऋण-प्रदान करने की सुविधा बेहतर बनाई गई, कार्पोरेट गवर्नेंस प्रथाओं को सुदृढ़ किया गया, वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया गया, शहरी सहकारी बैंकिंग क्षेत्र को मज़बूत बनाया गया तथा ग्राहक सेवा में सुधार किया गया। 1997 में दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में आस्ति-देयता के असंतुलन की जो समस्या बैंकों के सामने आई, उसने इस बात को रेखांकित किया कि व्यवस्था में आस्ति-देयता प्रबंधन प्रथा को मज़बूत किया जाए। अतः, एएलएम ढांचे को जोखिम प्रबंधन दिशानिर्देशों से जोड़ा गया। इस चरण की सबसे अच्छी उपलब्धि यह थी कि फरवरी 2005 में निजी क्षेत्र के बैंकों में आगे दी गई बातों को सुनिश्चित करने के लिए स्वामित्व और गवर्नेंस के बारे में एक व्यापक नीति ढांचा प्रारंभ किया गया - (i) अंतिम स्वामित्व और निमंत्रण को अच्छी तरह से बदल दिया गया, (ii) निदेशक और सीईओ तथा महत्वपूर्ण शेयरधारक 'सही और उचित' हैं और कार्पोरेट गवर्नेंस सिद्धांत का अच्छी तरह पालन कर रहे हैं, (iii) इष्टतम परिचालन और व्यवस्थागत स्थिरता के लिए निजी क्षेत्र के बैंक न्यूनतम 300 करोड़ रुपए की निवल मालियत बनाए रखें तथा (iv) नीति और प्रक्रियाएं पारदर्शी और उचित हैं।

वित्तीय क्षेत्र सुधार का प्रभाव

24. बैंकिंग क्षेत्र को मज़बूत बनाने के सुधार का अपेक्षित परिणाम निकला, बैंकों को परिचालन में अधिक लचीलापन मिल गया, प्रतिस्पर्धा की क्षमता बढ़ गई, और बैंकों के परिचालनों को नियंत्रित करने वाला कानूनी ढांचा और भी मज़बूत हो गया। इसके अलावा, सुधार में जो उपाय किए गए हैं उनका भारत की बैंकिंग प्रणाली की समग्र क्षमता और स्थिरता पर काफी प्रभाव पड़ा है। बैंकों की शाखाओं, एटीएम का विस्तार हो गया है। तुलनपत्र और समस्त बैंकिंग कारोबार का आकार बढ़ गया है। भारतीय बैंकों के वित्तीय निष्पादन में सुधार हुआ है जो उनकी लाभप्रदता की स्थिति से स्पष्ट है। पहले चरण के सुधार के बाद, खासतौर से राष्ट्रीयकृत बैंकों के कार्यनिष्पादन अत्यधिक बेहतर हो गए। दूसरे चरण में, पूंजी की

स्थिति बहुत अच्छी हो गई और बैंक अपनी अनर्जक आस्तियों को तेजी से कम करने में सक्षम रहे। जैसे ही आस्तियों की गुणवत्ता अच्छी होना शुरू हो गई, बैंकों ने भी अपने ऋण पोर्टफोलियो को विस्तार देना प्रारंभ कर दिया जिसमें उन्होंने कृषि और एसएमई क्षेत्रों को ऋण का प्रवाह बढ़ा दिया। लेकिन बहुत अधिक प्रतिस्पर्धा से बैंकों का मार्जिन कम हो गया था। लेकिन, इसके बावजूद बैंकों का लाभ अन्य संस्थाओं के बीच इसलिए अधिक था क्योंकि उनकी मात्रा अधिक थी और उनकी आस्तियों की गुणवत्ता अच्छी हो गई थी। आस्तियों पर प्रतिफल सुधार के प्रारंभ में अर्थात् 1991-92 में 0.39 था जो 2001-02 में बढ़कर 0.50 हो गया था। सुधार के काल में प्रौद्योगिकी का भी ज़्यादा इस्तेमाल किया गया जिससे बैंकों की ग्राहक सेवा और भी अच्छी हो गई।

25. सुधार के काल में, अंतरराष्ट्रीय मानक और सर्वोत्तम प्रथाओं को अपनाया गया और वही सुधार के प्राथमिक संचालक बने। यह भी सच है कि अर्थव्यवस्था प्रारंभ में जिस कठिन दौर से गुज़र रही थी उस समय, और बाद में उदारीकरण करने, वैश्विक बनाने तथा अर्थव्यवस्था को विकासगामी बनाने में भी इसी प्रकार के दृष्टिकोण की वकालत की गई थी।

समष्टि विवेकपूर्ण विनियमन की ओर बदलाव

26. सुधार की प्रक्रिया अपने दूसरे चरण तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि भारतीय बैंकिंग प्रणाली अनवरत रूप से एक प्रथा के रूप में चलती रही । अपनाए गए दृष्टिकोणों में से एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण जिसे वित्तीय संकट के बाद के समय में ज़्यादा अहमियत हासिल हुई वह थी समष्टि विवेकपूर्ण नीतियां । पूरे विश्व में, वित्तीय संकट के कारण अभी हाल ही में वित्तीय प्रणाली के संबंध में समष्टि विवेकपूर्ण विनियमन की संकल्पना आ पाई है । लेकिन, भारत में, आगे के पैराग्राफों में दिए गए उपायों के साथ-साथ बहुत पहले 2004 में ही धीरे-धीरे समष्टि विवेकपूर्ण वित्तीय विनियमन की ओर रुख कर लिया गया था । रिज़र्व बैंक ने प्रणालीगत जोखिमों को दूर करने के लिए प्रतिचक्रीय नीतियों को 2004 से उपकरण के रूप में इस्तेमाल करना प्रारंभ कर दिया था ताकि वित्तीय स्थिरता बनाए रखी जा सके, हालांकि इन नीतियों का उपयोग रिज़र्व बैंक ने पहले भी यदा-कदा किया था ।

27. प्रणाली में विभिन्न समयों पर उत्पन्न होने वाले जोखिमों को दूर करने के लिए जो उपकरण इस्तेमाल किए गए उसमें से कुछ ऐसे क्षेत्रों में मानक आस्तियों के लिए भिन्न जोखिम भार और प्रावधानीकरण के मानदंड अपनाए गए जिनमें ऋण की वृद्धि ज़्यादा थी, साथ ही आस्तियों के मूल्य भी तेजी से बढ़ रहे थे जिससे बहुत बड़े प्रणालीगत जोखिम के पैदा हो जाने और आस्ति संबंधी खतरे का आभास होने लगा था । इस प्रक्रिया में नीतियों ने स्वयं को हवा के रुख के प्रति 'लचीला' बना लिया और निर्दिष्ट क्षेत्रों में ऋण की तेजी को संतुलित करने में अपेक्षित प्रभाव डाल सकी और ऐसा उसने संकेत देकर तथा ऋण की लागत को प्रभावित कर के दोनों प्रकार से किया ।

28. जहां तक प्रणालीगत जोखिम के समस्त खंडों में व्याप्त होने का संबंध है, उनसे संबंधित मुद्दे जो एस-दूसरे से परस्पर जुड़े होते हैं, उनके समाधान के लिए अनेक उपाय किए गए जैसे - सकल अंतर-बैंक देयताओं के बारे में विवेकपूर्ण सीमा का निर्धारण, गैर-संपार्श्विक - निधीयन बाज़ार की उपलब्धता को केवल बैंकों तथा प्राधिकृत व्यापारियों के लिए अनुमति देना तथा उधार देने और उधार लेने की उच्चतम सीमा निर्धारित करना, अन्य बैंकों के पूंजी लिखतों में बैंकों के निवेश पर प्रतिबंध लगाना, बैंकों के एनबीएफसी और म्युचुअल फंड में एक्सपोजर पर शर्तें लगाना तथा प्रणालीगत रूप से महत्वपूर्ण एनबीएफसी एवं वित्तीय संगुट पर गहन निगरानी रखना, वित्तीय उत्पादों के बेलगाम नवोन्मेष पर पाबंदी लगाना, ओटीसी लेन-देन में रिपोर्टिंग प्लेटफार्म लागू करके तथा सीसीपी व्यवस्था से उसमें पारदर्शिता बढ़ाना और उसके जोखिमों को दूर करना ।

बैंकिंग विनियमन और सुधार के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण तथा उसमें निहित चुनौतियां

29. हकीकतों को ध्यान में रखते हुए, भारत में वित्तीय क्षेत्र में सुधार और विनियामकीय प्रगति की जो आवश्यकताएं हैं, उनके लिए जरूरी नहीं कि वे भी विकसित देशों में महसूस की जाने वाली आवश्यकताओं के अनुरूप हों । ईएमई वित्तीय क्षेत्र से जो जोखिम पैदा हो रहे हैं वे भी उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से व्यासीय तरीके से

भिन्न हैं । उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय क्षेत्र का फैलाव सीमित है और बाधाएं हैं तथा उनके उत्पाद, सेवाएं तथा संस्थाएं अविकसित हैं । क्षमता कम हैं जिसकी वजह से ये अर्थव्यवस्थाएं विभिन्न प्रकार के वित्तीय जोखिमों की शिकार रहती हैं , जबकि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में जोखिम मात्रा उनके व्यापक स्तर पर और भारी मात्रा में लेनदेन, आकार कनेक्टिविटी तथा वित्तीय संस्थाओं के प्रणालीगत महत्व, उत्पादों के परिष्करण और जटिलताओं तथा सेवाओं आदि से पैदा होते हैं ।

30. उभरते हुए बाज़ारों में हमेशा से वित्तीय विकास और विनियामकीय सुधार की जरूरत रही है । जटिल और परिष्कृत उत्पादों और उपकरणों को लाने या विशाल वित्तीय संरचना स्थापित करने के बजाय ईएमई को जरूरत है कि वे वित्तीय क्षेत्र के मूलभूत तत्वों पर फोकस करें जैसे - वित्तीय स्थिरता, सुदृढ़ बैंकिंग प्रणाली, औपचारिक वित्तीय प्रणाली और सेवाओं को व्यापक बनाना और उसे दूर-दूर तक पहुंचाना, वित्तीय समावेशन को बढ़ाना तथा वित्तीय साक्षरता को विस्तार देना, मौद्रिक नीति के प्रसारण को बेहतर बनाना तथा वित्तीय बाज़ार को विकसित करना व गहन बनाना (जैसे कार्पोरेट बांड बाज़ार तथा बेसिक करेंसी डेरिवेटिव्स) तथा उन्हें अधिक लिक्विड (जहां चलनिधि अधिक हो) बनाना आदि। इस प्रकार से वित्तीय प्रणाली की विशिष्ट आवश्यकताओं के समरूप बनाने की जरूरत है ।

31. भारतीय वित्तीय क्षेत्र के सुधार का एक सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि जानबूझकर 'सावधानीपूर्वक शनैः' रणनीति अपनाई गई थी ताकि सुधार की गति भारतीय वित्तीय प्रणाली की परिपक्वता, उसकी आत्मसात करने की क्षमता और विकास के चरण के हिसाब से हो, जो न बहुत तेज हो और न ही इतनी तात्कालिक हो कि वह वित्तीय प्रणाली के ढांचे को अव्यवस्थित कर दे, और न इतनी धीमी हो कि उसका सार्थक प्रभाव न पड़े । इस दृष्टिकोण में सुधार के छोटे और धीरे-धीरे उपाय शामिल हैं, साथ ही इन उपायों के प्रभावों पर बारीकी से सतत निगरानी रखना एवं बीच-बीच में आवश्यकतानुसार, आवश्यक कार्रवाई करने के लिए तैयारी रखना । बैंकिंग क्षेत्र में किए गए सुधार के उपायों का समन्वय अन्य क्षेत्रों के उपायों के साथ तथा बैंकिंग क्षेत्र के भीतर भी रखा गया था, इन उपायों का क्रम समुचित था जिसमें बिना नज़र हटाए स्थिरता पर फोकस किया गया था ।

32. एक ओर, जहां रिज़र्व बैंक ने सन् 2000 की शुरुआत से बासेल समझौते के अनुसार अपने दिशानिर्देशों को बनाने का समर्पित प्रयास किया और अनेक वैश्विक मानकों की तुलना में कई विवेकपूर्ण मानदंडों के बारे में अधिक दकियानूस मानदंड अपनाए, साथ ही उसने कुछेक विनियामकीय पहलुओं के बारे में अपने राष्ट्रीय विवेक को भी बनाए रखा ताकि उन क्षेत्रों में ऋण का प्रवाह बाधित न हो, बल्कि बना रहे जो विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं । इस प्रकार के कुछेक विचलन पर नीचे चर्चा की गई है भले ही वे समान से कम हों या समान विचलन से अधिक हों ।

पूंजी की आवश्यकता और लीवरेज अनुपात

33. भारतीय रिज़र्व बैंक ने बासेल III की अपेक्षाओं को 1 अप्रैल, 2013 से लागू किया है । भारत में भी बासेल III के अंतर्गत जोखिम भारित आस्तियों के लिए न्यूनतम पूंजी की अपेक्षा का 8 प्रतिशत है । लीवरेज अनुपात अपेक्षा 4.5 प्रतिशत है जबकि बासेल III का प्रस्ताव 4 प्रतिशत का है । भारत में, वास्तविक क्षेत्र अपनी ऋण की ज़रूरतों के लिए काफी हद तक बैंकिंग क्षेत्र पर निर्भर है । बैंकों से ऋण की आपूर्ति में किसी भी प्रकार की बाधा अर्थव्यवस्था के लिए अनर्थकारी हो सकता है । इसके अलावा, रेटिंग एजेंसियों द्वारा बैंकों के ऋणों को प्रदान की जाने वाली वर्तमान बाह्य क्रेडिट रेटिंग जो ऋण - जोखिम के लिए बासेल III के मानकीकृत दृष्टिकोण के अंतर्गत बैंकों के एक्सपोजर के लिए जोखिमभार तथा पूंजी का निर्धारण करती है, उसमें कई प्रकार की दरारें और कमजोरियां हैं । इसे ध्यान में रखते हुए यह अपेक्षित है कि अतिरिक्त पूंजी रखकर बैंक असफलता की संभावना को कम किया जाए । बैंकिंग पर्यवेक्षण से संबंधित बासेल समिति ने राष्ट्रीय विनियामकों को इस बात की छूट दी है कि वे न्यूनतम पूंजी अपेक्षा को और अधिक निर्धारित कर सकते हैं । अन्य कई अधिकार क्षेत्रों (जैसे - सिंगापुर, चीन, दक्षिण अफ्रीका, ब्राज़ील, आस्ट्रेलिया आदि) ने आस्तियों पर 8 प्रतिशत के जोखिम भार की तुलना में अधिक भार लगाए हैं । प्रसंगवश, रिज़र्व बैंक ने, यहां तक कि बासेल II में भी पूंजी की अपेक्षा का निर्धारण बासेल-निर्धारण से अधिक किया था ।

34. किंतु, पूंजी और लीवरेज अनुपात को विश्व के मानक से अधिक रखने से उत्पादक क्षेत्र पर प्रभाव पड़ेगा जिसे बैंकों से पर्याप्त ऋण की आपूर्ति में रुकावट पैदा होगी, इसके फलस्वरूप कुछ हद तक प्रतिकूल प्रभाव विकास पर पड़ेगा जिससे विकास और बैंकिंग स्थिरता के बीच तालमेल न होने का सवाल पैदा होता है। इसके अलावा, यह भी प्रश्न उठाए गए हैं कि पूंजी की भारी आवश्यकता एवं धीमे पड़े पूंजी बाज़ार को देखते हुए बैंकों को और अधिक पूंजी जुटाने की ज़रूरत है । इन बातों ने हमें विवश किया है कि हम एक संतुलित दृष्टिकोण अपनाएं, और अतिरिक्त अपेक्षा को जारी रखें ताकि बैंकिंग की समुत्थान शक्ति बनी रहे और बैंकों के पास निर्दिष्ट कमज़ोरियों एवं व्यावहारिक कठिनाइयों के समय पर्याप्त पूंजी की गुंजाइश बनी रहे ।

एक्सपोजर मानदंड - समूह उधारकर्ता सीमा

35. भारत में बैंकों के लिए एक्सपोजर मानदंड इस प्रकार हैं :

किसी एक उधारकर्ता के लिए बैंक की पूंजी निधि का 15 प्रतिशत और किसी समूह के उधारकर्ताओं के लिए बैंक की पूंजी निधि का 40 प्रतिशत, वर्तमान दिशानिर्देशों में बैंकों को इस बात की भी अनुमति दी गई है कि मूलभूत सुविधा की परियोजनाओं और अपवादात्मक परिस्थितियों में उक्त मानदंड से आगे जा सकते हैं और एकल उधारकर्ता तथा समूह के उधारकर्ता को क्रमशः 10 प्रतिशत व 15 प्रतिशत का अतिरिक्त एक्सपोजर दे सकते हैं । इसके अलावा, एनबीएफसी को बैंक वित्त, मांग मुद्रा/ नोटिस मुद्रा उधार लेने व उधार देने तथा अंतर-बैंक देयताओं आदि के लिए विशेष विवेकपूर्ण मानदंड हैं । बीसीबीएस ने अप्रैल 2004 में बड़े एक्सपोजर को मापने एवं नियंत्रित करने वाले पर्यवेक्षी ढांचे के संबंध में प्रकाशित मानक (बीसीबीएस मानक) में यह निर्दिष्ट किया गया है कि किसी बैंक का एक पार्टी या एक समूह जो प्रतिपक्षों से जुड़ा हो, को, समस्त समय एक्सपोजर मूल्य बैंक की उपलब्ध पूंजी आधार के 25 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए । मानक के अनुसार, पात्र पूंजी आधार को भी टियर I पूंजी की प्रभावी राशि तक ही संशोधित किया गया है ।

36. भारत में, हमारा प्रयास यह रहा है कि हम अपने दिशानिर्देशों को अंतरराष्ट्रीय सवोत्तम प्रथाओं को सदृश बनाएं और उसे विश्व के विवेकपूर्ण मानदंडों/मानकों के अनुसार अभिसरित करें । लेकिन, भारत एक उभरती हुई अर्थव्यवस्था है, जिसके पास विकास प्रक्रिया को वित्त प्रदान करने के लिए निधि के सीमित साधन हैं, भारतीय बैंकों का पूंजी आधार अपेक्षाकृत छोटा है और कुछ ही कार्पोरेट समूह ऐसे हैं जो मूलभूत सुविधा तथा विनिर्माण परियोजनाओं की बड़ी जिम्मेदारी ले सकते हैं, किंतु उनके आकार में अचानक वृद्धि हो जाने से उनकी कुछ बाध्यताएं हैं जिन्हें उनको पूरा करना होता है । भारत में मूलभूत सुविधाओं के लिए धन की आवश्यकता बहुत अधिक है । 12वीं पंचवर्षीय योजना जो चालू वर्ष से शुरू हो रही है, में इसके लिए लगभग 1 ट्रिलियन अमरीकी डालर अर्थात् 61 लाख करोड़ रुपए की आवश्यकता है । इस समय, इसका अधिकांश हिस्सा बैंकों द्वारा प्रदान किया जा रहा है । मूलभूत सुविधा के क्षेत्र में बैंकिंग क्षेत्र का एक्सपोजर मार्च 2003 में कुल बैंक ऋण का 3.61 प्रतिशत था जो बढ़कर मार्च 2014 में कुल बैंक अग्रिम का लगभग 15.09 प्रतिशत हो गया है ।[1] समूह उधारकर्ता की सीमा भारत में अंतरराष्ट्रीय मानदंडों की तुलना में बहुत अधिक है, क्योंकि वह देश की विकासात्मक आवश्यकता है। समूह उधारकर्ता की सीमा को एकल उधारकर्ता की सीमा के समान रखने से, जो कुल पूंजी के बजाय टियर I से संबंधित है, इन कार्पोरेट समूहों तथा मूलभूत सुविधा क्षेत्र को बैंक वित्त (जो भारत में वित्त का प्रमुख स्रोत है) की उपलब्धता को अत्यधिक प्रभावित कर देगा और इस प्रकार से अर्थव्यवस्था का विकास प्रभावित होगा। समूह एक्सपोजर सीमा को भी तंग रखने से बैंकों के पास उधार देने योग्य संसाधन बेशी हो जाएंगे जिनका परिणाम विपरीत चयन में बदल जाएगा । वहीं पर, विशेष कारोबार या कारोबारी समूह में अत्यधिक एक्सपोजर से स्थिरता बाधित हो जाएगी और उसका परिणाम यह होगा कि ऋण एक ही कारोबार में केंद्रित होने लगेगा । अतः, जब हमें यह मालूम है कि समूह उधारकर्ता की राशि की सीमा को कम करना है, तो हमें यह ध्यान में रखकर विचार करना होगा कि किस सीमा तक और कितनी सहजता से उसे नीचे लाते हुए आगे बढ़ा जाए ताकि अर्थव्यवस्था की विकास संभावनाओं पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े ।

[1] स्रोतः भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकी हैंडबुक - 2013-14

चलनिधि मानक - एसएलआर धारिता को किस रूप में मानना

37. वर्ष 2007 में जो वित्तीय संकट प्रारंभ हुआ था उसके प्रारंभिक 'चलनिधि चरण' में, पूरे विश्व में अनेक बैंकों को, पूंजी का पर्याप्त स्तर होने के बावजूद अप्रत्याशित कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । बैंकिंग पर्यवेक्षण से संबंधित बासेल समिति (बीसीबीएस) ने यह पाया कि इस प्रकार की कठिनाइयों का कारण यह था कि चलनिधि जोखिम प्रबंधन के बुनियादी सिद्धांतों का पालन करने में चूक की गई । इसके उत्तर में, बीसीबीएस ने अपने चलनिधि ढांचे की नींव के रूप में सुदृढ़ चलनिधि जोखिम प्रबंधन और पर्यवेक्षण 'सुदृढ़ सिद्धांत' के लिए सिद्धांत प्रकाशित किए , जो जोखिम प्रबंधन और चलनिधि जोखिम के निधीयन के पर्यवेक्षण के बारे में विस्तृत दिशानिर्देश प्रदान करता है । इन सिद्धांतों के अनुपूरक के रूप में बीसीबीएस ने चलनिधि के लिए धन देने हेतु दो न्यूनतम मानक विकसित करते हुए अपने चलनिधि ढांचे को और भी मज़बूत कर दिया, वे मानक थे - चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर) और निवल स्थिर निधीयन अनुपात (एनएसएफआर) जिससे दो पृथक किंतु अनुपूरक उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके । एलसीआर का उद्देश्य यह है कि बैंक के चलनिधि जोखिम प्रोफाइल को अल्पकालिक समुत्थान-शक्ति प्रदान की जाए जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि अत्यधिक दबाव की स्थिति में भी उसके पास एक महीने तक के लिए उच्च गुणवत्ता की आस्ति पर्याप्त रूप से उपलब्ध रहे । एनएसएफआर का उद्देश्य अपेक्षाकृत थोड़ा अधिक समय तक (एक वर्ष) के लिए समुत्थान-शक्ति प्रदान करना है इससे बैंक के लिए अतिरिक्त प्रोत्साहन पैदा होगा और वे अपनी गतिविधियों के लिए सतत आधार में सहज तरीके से निधि का स्रोत उपलब्ध करा पाएंगे ।

38. बीसीबीएस के अंतिम मानकों का अनुसरण करते हुए रिज़र्व बैंक ने 'चलनिधि कवरेज अनुपात (एलसीआर)चलनिधि जोखिम निगरानी उपकरण और एलसीआर प्रकटीकरण मानक' के संबंध में अपने अंतिम दिशानिर्देश 1 जून, 2014 को जारी कर दिए हैं । रिजर्व बैंक के दिशानिर्देशों में भारत के वित्तीय बाज़ार में उपलब्ध एचक्यूएलए की रेंज को और बीसीबीएस मानक द्वारा निर्धारित चलनिधि उपकरणों की तुलना में उनके पास उपलब्ध चलनिधि को ध्यान में रखा गया है । भारत के बैंकों के तुलनपत्र में पर्याप्त चलनिधि आस्तियां इसलिए हैं क्योंकि सीआरआर और एसएलआर की अपेक्षा बैंक की एनडीटीएल का क्रमशः 4 प्रतिशत व 22 प्रतिशत रखी गई हैं । इस सीआरआर और एसएलआर की तुलना में यदि बैंक में एचक्यूएलए की अतिरिक्त आवश्यकता होती है तो वह अर्थव्यवस्था में बढ़ती हुई जरूरतों को पूरा करने के प्रति बैंक की क्षमता को कम कर देगी । इससे भारत के बैंकों की अंतरराष्ट्रीय बैंकों की तुलना में प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता भी कम हो जाएगी । इसे ध्यान में रखते हुए एनडीटीएल के 2 प्रतिशत तक की सरकारी प्रतिभूतियों को, जो इस समय मार्जिनल स्थायी सुविधा (एमएसएफ) के तहत अनुमत है उसे भारत में स्तर 1 एमक्यूएलए के रूप में शामिल करने की अनुमति दी गई है । इसके अतिरिक्त, रिज़र्व बैंक के दिशानिर्देशों में पात्र सामान्य इक्विटी शेयरों को 50 प्रतिशत की कटौती (हेयर कट) सहित स्तर 2 बी एचक्यूएलए में शामिल करने की अनुमति दी गई है ।

प्रति-चक्रीय पूंजी बफर

39. वर्ष 2008 के वित्तीय संकट के बाद, बीसीबीएस ने राष्ट्रीय प्राधिकारियों के लिए दिशानिर्देश प्रकाशित किए थे जो प्रतिचक्रीय पूंजी बफर (सीसीसीबी) का परिचालन करते हैं ताकि न्यूनतम विनियामकीय पूंजी की अपेक्षा में अत्यधिक प्रतिचक्रीयता को धीमा रखने के लिए एक ढांचा प्रस्तावित किया जा सके जिसका उद्देश्य है कि आर्थिक तंगी के समय बैंकों से ऋण का प्रवाह अच्छे समय में संचित पूंजी से वास्तविक क्षेत्र को बनाए रखा जा सके । इतना ही नहीं, जहां अच्छे समय में, बैंकों को अपनी पूंजी बढ़ानी होगी, वहीं पर अंधाधुंध तरीके से ऋण देने पर रोक लगेगी । भारत के संदर्भ में, इसका कार्यान्वियन बहुत नपे-तुले अंदाज में करना होगा और वित्तीय गहनता के कारण बैंकिंग प्रणाली में होने वाले संरचनागत परिवर्तनों को तथा संरचनागत एवं चक्रीय कारकों को अलग रखने की जरूरतों को ध्यान में रखना होगा । तदनुसार, यह माना गया है कि सीसीसीबी के निर्णयों को अपने लिए सहज बनाने हेतु अनुभवजन्य विश्लेषण के लिए जहां ऋण-जीडीपी अंतर का उपयोग किया जाएगा, वहीं भारत में अन्य संकेतकों जैसे - 'सकल अनर्जक आस्तियां (जीएनपीए)' में वृद्धि, औद्योगिक परिदृश्य सर्वेक्षण, ऋण और जमा का अनुपात आदि को भी विचार में लेना होगा ।

लेखांकन मानदंड और आईएफआरएस का कार्यान्वयन

40. हमारे विवेकपूर्ण मानदंड कुछ प्रमुख क्षेत्रों जैसे - निवेश वर्गीकरण और मूल्यांकन मानदंड, अनर्जन निर्धारण तथा ऋण-हानि का प्रावधानीकरण एवं प्रतिभूतिकरण के बारे में अंतरराष्ट्रीय लेखांकन मानदंडों से भिन्न हैं । इन दिशानिर्देशों को भारतीय वित्तीय प्रणाली के परिदृश्य को ध्यान में रखकर बनाया गया है । उनमें से कुछ अंतरराष्ट्रीय प्रथाओं की तुलना में बहुत ही दकियानूसी हैं । उदाहरण के लिए, हम निवेश पोर्टफोलियो में वसूली न गई राशि को शामिल नहीं करने देते हैं, जबकि जिन हानियों को पूरा नहीं किया जा सकता उनके लिए प्रावधान करने की अपेक्षा की गई है । इसी प्रकार, बैंकों से हमारी अपेक्षा है कि वे मानक आस्तियों के बारे में भी प्रावधान करें जिनके अनर्जक होने की कोई गुंजाइश नहीं होती है । इन दिशानिर्देशों ने अभी तक भलीभांति कार्य किया है, जैसे-जैसे हमारा वित्तीय क्षेत्र विकसित होता जाएगा हम अपने दिशानिर्देशों को अंतरराष्ट्रीय अपेक्षाओं के अनुरूप बनाएंगे ।

41. वर्ष 2009 में जी-20 देशों के नेताओं की लंदन में आयोजित बैठक में यह मांग की गई थी कि 'लेखांकन मानक निर्धारित करने वाले तत्काल आधार पर पर्यवेक्षकों एवं विनियामकों के साथ मिलकर काम करें और मूल्यांकन एवं प्रावधानीकरण के मानको को बेहतर बनाएं और पूरे विश्व के लिए एक उच्च गुणवत्ता वाले मानक निर्धारित करें' । अंतरराष्ट्रीय लेखांकन मानक बोर्ड (आईएएसबी) ने इसकी जटिलताओं को दूर करने एवं बेहतर अभिसरण के लिए आईएएस39 को आईएफआरएस9 से बदल दिया है ।

42. भारत की यह वचनबद्धता है कि वह आईएफआरएस को अभिसरित करेगा और वित्त मंत्री की बजट घोषणा कि कंपनियां (बैंक, बीमा एवं एनबीएफसी के अलावा) अपना वित्तीय विवरण अनिवार्यतः तैयार करें जो वित्तीय वर्ष 2016-17 से आईएफआरएस के आधार पर अभिसरित भारतीय लेखांकन मानक (इंड एएस) पर तैयार किया जाए । भारतीय रिज़र्व बैंक इसके लिए विभिन्न हितधारकों से परामर्श करके बैंकों तथा एनबीएफसी के लिए एक रूपरेखा तैयार करने के अंतिम चरण में है । भारतीय बैंकों के लिए मुख्य चुनौती प्रणाली में परिवर्तन, प्रत्याशित हानि अनर्जन मॉडल को लागू करना तथा मानव संसाधन में कौशल पैदा करने की होगी । कई मुद्दे विनियामकीय तथा लेखांकन ढांचे के परस्पर कार्रवाई से पैदा होंगे । उदाहरण के लिए, प्रत्याशित हानि मॉडल से उत्पन्न जटिलताओं के अलावा, घटित हानि मॉडल से प्रत्याशित हानि मॉडल की ओर जाना भी पूंजी पर्याप्तता को अत्यधिक प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकता है । इसी प्रकार से, अन्य व्यापक आय श्रेणी के माध्यम से उचित मूल्य (एफवीओसीआई), साथ ही बासेल III के अंतर्गत विनियामक फिल्टर के हटा दिए जाने से भी पूंजी में अत्यधिक अस्थिरता पैदा कर देगी । इस के कार्यान्वयन संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए और एक मॉडल से दूसरे मॉडल की ओर जाने में सहजता लाने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक ने एक कार्यदल का गठन किया है जिसमें पेशेवर व्यक्ति हैं जिनके पास आईएफआरएस के कार्यान्वयन का अनुभव है, बैंकर्स तथा रिज़र्व बैंक के वे स्टाफ हैं जो विनियमन और पर्यवेक्षण का कार्य करते हैं ।

केवाइसी और एएमएल मानक

43. केवाइसी/एएमएल/सीएफटी के अंतरराष्ट्रीय मानकों का निर्धारण वित्तीय एक्शन टास्क फोर्स (एफएटीएफ) द्वारा किया गया है और रिज़र्व बैंक केवाइसी/एएमएल/सीएफटी के बारे में दिशानिर्देश मुख्यतया एफएटीएफ की सिफारिशों के आधार पर जारी करता है । किंतु, एफएटीएफ की सिफारिशें जिनमें कई क्षेत्रों को कवर किया जाता है, उसके होते हुए भी रिज़र्व बैंक, बैंकों को तभी अनुदेश जारी करता है जब धन शोधन रोकथाम अधिनियम/नियम 2002 में उस प्रकार के प्रावधान हों । उदाहरण के लिए, एफएटीएफ की सिफारिश संख्या 17 में केवाइसी में कतिपय शर्तों के अधीन तीसरे पक्ष का सत्यापन किया गया है । भारत में, हमने तब तक इसकी अनुमति नहीं दी थी जब तक सरकार द्वारा अगस्त 2013 में पीएमएल नियमों में ऐसा करने का प्रावधान नहीं कर दिया गया । इसी प्रकार, एफएटीएफ की सिफारिश संख्या 12 के अनुसार, बैंकों/वित्तीय संस्थाओं से अपेक्षित है कि वे यह जानने के लिए उपर्युक्त उपाय करें कि क्या ग्राहक या लाभार्थी मालिक घरेलू स्तर पर राजनीतिक व्यक्ति (पीईपी) है और यदि है तो उसके संबंध में अतिरिक्त सावधानी बरतने के उपाय आदि किए जाएं । चूंकि सरकार ने इस संबंध में कोई निर्णय नहीं किया है, इसलिए रिज़र्व बैंक ने बैंकों/वित्तीय संस्थाओं से एफएटीएफ की सिफारिशों का पालन करने के लिए अनुदेश जारी नहीं किए हैं ।

समापन

44. अंतिम बात, एक महत्वाकांक्षी अर्थव्यवस्था के लिए बैंकिंग विनियम बनाते समय बहुत सी मुश्किल वास्तविकताओं को ध्यान में रखना पड़ता है और नीतियों को नपे-तुले अंदाज में बनाना पड़ता है । जहां कुछ एक विनियमनों में अंतरराष्ट्रीय मानकों, मानदंडों और सर्वोत्तम प्रथाओं के अनुसार चलना पड़ता है, वहीं कुछ अन्य मामलों में विनियमों को राष्ट्रीय विवेक के अनुसार सोच-समझकर बनाना होता है जो उक्त मानकों और मानदंडों से भिन्न होते हैं । इस संबंध में स्वहित के प्रति चेतना मार्गदर्शन प्रदान करती है । भारत के संदर्भ में, हमारे पूर्व के अनुभव एवं उनसे विचलन की सीख भी हमारे लिए अतिरिक्त मार्गदर्शन बनती है । रिज़र्व बैंक इन बातों के प्रति सदैव सचेत रहता है । धन्यवाद ।

संदर्भ :

भारतीय रिज़र्व बैंक-कार्य और कार्यपद्धति । भारिबैं प्रकाशन (2001 संस्करण)

ए.जी. कारखानीस, के.ए.नजमी एंड विशाखा भगवती : भारत - बैंकिंग विनियमन - ग्लोबल लीगल इनसाइट में लेख (प्रथम संस्करण)